शिल्पकला वेदिका, हाईटेक सिटी, माधापुर, हैदराबाद में दिनांक 22 जून, 2010 को 11.30 बजे हैदराबाद विश्वविद्यालय के 12वें दीक्षांत समारोह में भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री मो. हामिद अंसारी का अभिभाषण

रहस्योद्‌घाटन से भाषण प्रारंभ करने का रिवाज नहीं है। फिर भी, मुझे इस श्रोता समूह के सामने यह कबूल करना होगा कि कुलाधिपतिजी की अनुनय विनय की क्षमता और इस शिक्षण संस्थान की उच्च प्रतिष्ठा मुझे आज यहां आने के लिए प्रेरित करने हेतु पर्याप्त थी और आज मैं यहां आकर बहुत खुशी महसूस कर रहा हूं।

साथ ही इनमें हैदराबाद की अपनी सर्वदेशीय महक को भी जोड़ लिया जाए। सोलहवीं सदी में इस नगर के संस्थापक ने फरमान जारी किया था कि यह शहर अपने आप में 'स्वर्ग की नकल' होना चाहिए। युगों के बीतने के साथ कुछ लोग इसके नतीजे से सहमत नहीं हुए। नजदीकी खानों से मिलने वाले हीरों ने इसे शोहरत और मुख्य स्थान दिलाया और वस्त्रों ने इसे वाणिज्यिक महत्व प्रदान किया। इसने एक मनोहर और समृद्ध भाषा तथा एक मिली जुली संस्कृति को जन्म दिया। एक कुतुब शाही शायर ने विश्व में इसके स्थान को चंद शब्दों में इस प्रकार बयान किया है: *दक्कन है नगीना, अंगूठी है जग।*

तब किसी ने यह महसूस नहीं किया होगा कि 20 वीं सदी के अंतिम वर्षों में यह नगर आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दृष्टि से *कोहिनूर* बन जाएगा। यह बात उत्कृष्टता के सूत्र को पकड़े रहते हुए समायोजन और परिवर्तन को अपनाने के मामले में हैदराबाद की प्रतिभा का बखान करती है। भारतीय विश्वविद्यालयों की हाल में की गई रैंकिंग में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाला हैदराबाद विश्वविद्यालय इस बात का स्वयं में एक अच्छा उदाहरण है।

दीक्षांत समारोह बौद्धिक उपलब्धियों को सम्मानित करने के अवसर होते हैं। हालांकि, ज्ञानार्जन औपचारिक अवरोधों से मुक्त होता है और इसकी किसी भी शाखा में ज्ञान की खोज विश्वविद्यालय की उपाधि अर्जन के साथ समाप्त नहीं हो जाती है। तार्किक और विवेचनात्मक रूप से सोचने के लिए प्रशिक्षित मस्तिष्क कार्य करना बंद नहीं करता है। यह बात अक्सर उसका परंपरा के विरूद्ध वास्तविकता से सामना कराती है और इसपर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए वह बाध्य महसूस करता है। यहीं शिक्षा-क्षेत्र के भीतर और इससे बाहर की दो दुनियाएं एक साथ जुड़ जाती हैं।

यह धारणा है कि बीते हुए युग में विश्वविद्यालय एक ऐसा शांत व एकांत प्रांगण होता था, जहां ज्ञानार्जन इसके खुद के वास्ते हासिल किया जाता था, जो इसकी सीमाओं से परे की दुनिया की साधारण उपयोगवादी आवश्यकताओं से जुड़ा हुआ नहीं था। तथापि, वास्तविकता कुछ कम अरूचिकर थी और समाज व इसके प्रवक्ताओं के प्रति सावधानीपूर्वक सृजित मेल-मिलाप की भावना से रहित नहीं थी। यह भी परिवर्तन के अध्यधीन थी। आज, यह बात खुले तौर पर स्वीकार की जाती है कि विश्वविद्यालय में अध्यापन व शोध कार्य, और ज्ञान की प्रगति, जिसे यह सृजित करता है, काफी हद तक समाज की बदलती जरूरतों और मांगों से जुड़ी होनी चाहिए। इस प्रकार, सामाजिक प्रयोजन का महत्व रेखांकित हो जाता है। वस्तुतः यह जटिल सवाल इसके दायरे से संबंधित है।

कुछ हफ्ते पहले मैंने प्रोफेसर स्टीफन चान, जो स्कूल ऑफ ऑरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़, यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन में 'अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध' विषय पढ़ाते हैं, के एक आत्म-विश्लेषी निबंध को पढ़ा था। एक नए अंतर्राष्ट्रीयवाद की चाहत के साथ विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं का अन्वेषण करते हुए, वह उन बातों के बीच वर्तमान में व्याप्त संघर्ष पर प्रकाश डालते हैं जिन्हें वह 'निश्चितता के अभिकथन' कहते हैं और जिन्हें उन्होंने 'किसी

अंतर्राष्ट्रीय नैतिक गतिरोध में लागू किए जाने वाले दबाव के उत्कृष्ट रूप' के तौर पर वर्णित किया। वह जटिल बातों के बारे में सार्वजनिक रूप से तथा कल्पनापूर्वक बोलने और रूढ़िवादिता को सुधारात्मक उपायों से चुनौती देने की आवश्यकता पर जोर देते हैं। वह आगे कहते हैं, 'विचार का संबंध सोचने से है, और व्यथा की छवियों से निर्देशित व मात्र व्यथित होने से नहीं है।'

उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इस स्थिति से संबंधित नागरिक को पांच सिद्धांतों - पारदर्शिता, स्वेच्छाचारिता का अभाव, जवाबदेही, दया और समाधान - से प्रेरित होना चाहिए। चान के पांच सिद्धांतों में से किसी भी सिद्धांत के बारे में कुल-मिलाकर नवीनता कुछ भी नहीं है; फिर भी, एक साथ मिलकर ये कार्रवाई का रास्ता तो दिखाते ही हैं। समालोचनात्मक विचार-शक्ति से सम्पन्न और अपने-अपने चुने हुए विषयों में पारंगत, ये युवा श्रोतागण बखूबी जानते हैं कि नागरिकता के दायित्वों को छोड़ा नहीं जा सकता और न ही इन्हें प्रत्यायोजित या स्थगित किया जा सकता है, क्योंकि शाश्वत सतर्कता ही मुक्ति व अधिकारों की रक्षा करने का एकमात्र तरीका है और, जैसा कि एडमंड बुरके का कहना है, 'बुराई की जीत के लिए जरूरी सिर्फ यही बात है कि अच्छे व्यक्ति कोई कार्य न करें'।

आप में से कुछ, जैसा कि मैं भी, इसे और जानना चाहेंगे। नागरिकों के लिए विधिक एवं नैतिक अत्यावश्यकतायें क्या हैं? वह सर्वाधिक व्यवहार्य रीति क्या है जिससे उसके दायित्वों का निर्वहन हो सके? ये दोनों मानवीय चरित्र के बारे में हमारी अवधारणा तथा जिस विश्व में हम रहते हैं, उससे जटिल रूप से जुड़े व प्रभावित होते हैं। यह अपरिहार्य रूप से भविष्य के संवारे जाने को प्रभावित करते हैं।

आइये हम बाद वाले कथन पर विचार करें। मानव शब्द एक निश्चित लक्ष्यार्थ रखता है। शब्दकोश के यादृच्छिक पठन से कई सम्बद्ध शब्दों का पता चलता हैः मानवीय,

मानववाद, मानवतावादी, मानवतावाद, मानवता, मानवीय बनाना, मानवजाति, मानवता से। इनमें से प्रत्येक शब्द इंसान बनने के पहलू को दर्शाता है और इससे कुछ हद तक निर्देशात्मक हो जाता है, अगर इंसान बनने के दावे को बनाये रखना है। अपने विपरीतार्थक शब्द, जो इसके प्रतिवाद या विपरीत को बतलाता है, के साथ रखे जाने पर यह और स्पष्ट हो जाता है। इसके अलावा, और दिसंबर, 1948 की *संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार संबंधी सार्वभौमिक घोषणा* के शब्दों का उपयोग किए जाने से, मानवता का और फलतः मानवाधिकारों के क्षेत्र का विस्तार 'सभी लोगों और सभी राष्ट्रों' तक हो जाता है।

आप में से जो व्यक्ति राजनीतिक दर्शन से परिचित होंगे, वे इस तर्क को याद करेंगे जिसके माध्यम से अरस्तु ने 'एक अच्छे व्यक्ति' और 'एक अच्छे नागरिक' के बीच अन्तर किया था और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि दोनों के गुण प्रत्येक दृष्टि से परिपूर्ण उत्तम राज्य के मामले को छोड़कर 'सर्वदा एक समान' नहीं हो सकते। उसने अच्छे नागरिक को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जिसे यह जानकारी हो कि 'किस प्रकार एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में शासन करना चाहिए और किस प्रकार एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में आज्ञा का पालन करना चाहिए'। उसे, जैसा कि बाद के एक दार्शनिक ने कहा है, स्वतंत्र रहने की आवश्यकता और नैतिक अनिवार्यता दोनों की कद्र करनी चाहिए।

नागरिकता की ये विशेषताएं समय के साथ-साथ परिष्कृत होती रहीं। पेरिकल्स का अंत्येष्टि भाषण (फ्यूनरल ऑरेशन ऑफ पेरिकल्स) इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण है जिसे इतिहासकार युसीडाइट्स द्वारा भावी पीढ़ियों के लिए दर्ज किया गया था। उसके द्वारा उल्लिखित दो विशेषताएं वैश्विक स्तर पर मान्य हैं: पहली विशेषता यह है कि नागरिक 'लोक विषयों के निष्पक्ष निर्णायक होते हैं' और दूसरी यह है कि चर्चा को 'कार्य के मार्ग में अवरोध के

रूप में देखने के बजाए, इसे किसी भी विवेकपूर्ण कार्यवाही की अनिवार्य आरम्भिक तैयारी समझते हैं।'

एक नागरिक अधिकार-सम्पन्न होता है, वह लोक जीवन में मूकदर्शक बनकर नहीं बल्कि अधिकार के आधार पर सहभागिता करता है, ऐसा वह समान नागरिक के रूप में करता है न कि प्रजा के रूप में। राजा-प्रजा की संकल्पना, जिसका हमारे दैनिक शब्द कोश में ऐसा महत्वपूर्ण स्थान है, बीते युग का एक अवशेष है और आज की विधिक संरचना में इसका कोई आधार नहीं है। इसके बावजूद, इसका आग्रह उस मनोवैज्ञानिक बोझ पर प्रकाश डालता है, जिसे हम अवचेतन मन में वहन करते हैं।

यह याद रखना जरूरी है कि आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य ने नागरिकों के अधिकार-पत्र को विनिर्दिष्ट किया है; यह नागरिकों के कर्तव्यों पर भी प्रकाश डालता है। हमें उदाहरण खोजने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हम स्वयं ही आदर्श हैं। भारत का संविधान किसी संविधान के सर्वोत्तम उदाहरणों में से एक है, जिसमें नागरिकों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का सामंजस्य-पूर्ण सम्मिश्रण है। केवल संख्या और विशालता की दृष्टि से मानवीय स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता जिस सीमा तक प्रदान की गई, वह मानवीय इतिहास में बेमिसाल है। यह समय की कसौटी पर खरी उतरी और इसकी व्यापक रूप से प्रशंसा की गई है।

III.

नागरिकों के अधिकार-पत्र को भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के अध्याय में वर्णित किया गया है। इनका संबंध छः व्यापक श्रेणियों से है: समता का अधिकार, स्वातंत्र्य-अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार और संवैधानिक उपायों का अधिकार। कुछ अन्य अधिकार इस दस्तावेज के अन्य खंडों में दिए गए हैं, उदाहरण के लिए मनमाने करारोपण से संरक्षण, व्यापार, वाणिज्य

और पारस्परिक-व्यवहार की स्वतंत्रता, तथा कतिपय वर्गों के सामूहिक अधिकार। इस पाठ को संवैधानिक नैतिकता की व्यापक संरचना द्वारा रेखांकित किया गया है।

संविधान को अंतिम रूप दिए जाने और उसकी उद्घोषणा किए जाने के कई वर्षों के पश्चात् मौलिक कर्तव्यों का एक ऐसा खंड जोड़ा गया जो इस अवधारणा पर आधारित था कि किसी लोकतांत्रिक राजव्यवस्था के सफलतापूर्वक कार्यकरण के लिए नागरिक निकाय द्वारा उत्तरदायित्वों के अंगीकरण और निर्वहन के माध्यम से शासन की प्रक्रिया में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक हो जाती है। इस दृष्टिकोण को न्यायालय द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

आप पायेंगे कि हमारे संविधान के अनुच्छेद 51क में 'मूल कर्तव्य' के रूप में वर्णित नागरिकों के ग्यारह कर्तव्यों की सूची मौजूद है। आज की हमारी चर्चा के परिप्रेक्ष्य में इनमें से तीन पर विशेष रूप से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। ये कर्तव्य समरसता और समान भाईचारे की भावना के संवर्धन निर्माण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना के विकास और व्यक्तिगत तथा सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने के प्रयास से संबंधित हैं। इनको संविधान की उद्देशिका में अत्यंत स्पष्ट तौर पर बताई गई न्याय और भ्रातृत्व की अपेक्षाओं के साथ पढ़े जाने की आवश्यकता है।

मैं इस बात पर जोर डाल रहा हूं क्योंकि हमारे नागरिकों के बीच सबसे अधिक शिक्षित होने के नाते आप लोगों की इस मामले में विशेष जिम्मेवारी बनती है। चूंकि आप विश्वविद्यालय से निकलकर इससे आगे की दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं, इसलिए आपको अधिकारों तथा कर्तव्यों के इस सार-संग्रह और इनके प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराने की आवश्यकता के विषय में स्मरण कराना उपयुक्त होगा। इससे आपको एक नागरिक-निकाय के

तौर पर हम जिस दिशा में जा रहे हैं, उसका आकलन करने में तथा जहां आवश्यक हो वहां सुधारात्मक उपाय तलाशने में भी सहायता मिलेगी।

एक प्रख्यात व्यक्ति द्वारा यह टिप्पणी की गई है कि आज हम 'बेसब्री से सत्यनिष्ठा पर आधारित राजनीतिक संस्कृति की तलाश' कर रहे हैं। इसका एक स्पष्ट कारण व्यक्तिगत और सामूहिक स्तरों पर मूल्यों की व्यवस्था में गिरावट है। इसके विपरीत विचार भी मौजूद हैं। यर्थाथवादी दृष्टिकोण का समर्थन करने वाले हमें इस सिद्धांत की ओर प्रेरित करते हैं कि 'राजनीति संभाव्य की कला है'। पहले विचार से पीड़ा परिलक्षित होती है और दूसरे से आत्मतुष्टि।

यहां एक बार पुनः, जैसा कि मानवता की अवधारणात्मक रूपरेखा के मामले में होता है, सत्यनिष्ठा और 'संभाव्य' जैसे शब्दों के दायरे और निहितार्थों को स्पष्ट रूप से समझना होगा। सत्यनिष्ठा का अभिप्राय नैतिक श्रेष्ठता और निष्कपटता से है; इनका अभाव अनैतिकता और कपट का सूचक होगा। इसी प्रकार 'संभाव्य' जैसे शब्द से अनैतिक और कपट को स्वीकार करने सहित अनेक प्रकार की संभावनाएं प्रकट होती हैं।

अतः इस बात के लिए तर्क प्रस्तुत करना संभव हो जाता है कि मानवता और सत्यनिष्ठा की हमारी खोज हमें निश्चित तौर पर उस दृष्टिकोण की ओर ले जाती है जिसमें हम अतिसक्रिय तौर पर उन मानवीय, मानवोचित, नैतिक और निष्कपट मूल्यों और परिपाटियों को तलाशते हैं और स्वयं को उनकी ओर प्रवृत्त करते हैं जो संविधान द्वारा परिभाषित तथा विहित अर्थों में लोकहित में पूर्णतया योगदान करते हों। इस प्रकार जो साधारण तौर पर संभव होता है उससे जो असंभव सा लगता है, उसमें परिवर्तन किया जाता है।

कई दशकों पूर्व गांधीजी ने सात सामाजिक बुराइयों की पहचान की थी। ये राजघाट में उनकी समाधि के निकट एक पट्टी पर खुदे हुए हैं। यह पहचान अत्यावश्यक है किन्तु पर्याप्त

नहीं है। समय की मांग है कि बुराई को दूर किया जाए, सुधारात्मक उपाय लागू किए जाएं, परिवर्तन किया जाए।

IV

कदाचित इससे पहले कि यह कहा जाए कि पूर्वोक्त विचार दर्शन और आर्दश के क्षेत्र में आता है, मैं तुरंत कह देना चाहूंगा कि सत्यनिष्ठा और संवैधानिक नैतिकता में गिरावट संसाधनों का अपव्यय है और यह भौतिक संदर्भों में जनहित के लिए हानिकारक है।

नियंत्रक महालेखा परीक्षक, संसद की लोक लेखा समिति तथा इंडिया चैप्टर ऑंफ ट्रांस्पेरेन्सी इंटरनैशनल की रिपोर्टों से यह साबित होता है। सूचना के अधिकार का भला हो, जिसकी वजह से आज अन्यथा भी लोगों को काफी सूचना प्राप्त हो जाती है। ये सब बातें मिलकर सत्यनिष्ठा संबंधी मानदंडों के उल्लंघन की चिंताजनक प्रवृत्ति को दर्शाते हैं।

दूसरे क्षेत्रों की बात करें तो यही बात संविधान में अंतर्विष्ट मानवाधिकारों, मानवता और न्याय के मानदंडों, जिन्हें पारंपरिक अंतर्राष्ट्रीय कानून तथा प्रसंविदाओं में अनुपूरित या विस्तारित किया गया है और भारतीय गणराज्य द्वारा स्वीकृत किया गया है, के प्रति हमारी प्रतिबद्धता के लिए भी विभिन्न मात्रा में लागू होती है।

इस प्रकार सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता स्पष्ट रूप से जान पड़ती है। जन जागरूकता मामले का एक पहलू है, जबकि लक्षित सार्वजनिक कार्रवाई दूसरा पहलू।

यह स्पष्ट है कि एक नागरिक होने और एक अच्छा नागरिक होने में बड़ा अंतर है। नागरिक होना एक कानूनी तथ्य है जबकि एक अच्छा नागरिक होने के लिए सामान्य हित में भागीदारी करने तथा योगदान देने की जरूरत होती है। इसके अलावा, नागरिक जिम्मेवारियों एवं क्रियाकलापों में भागीदारी के स्वरूप और सीमा के आधार पर नागरिकों को तीन समूहों में वर्गीकृत करना संभव है: (क) वे लोग जो वैयक्तिक रूप से अपनी जिम्मेवारी समझते हैं; (ख) वे

लोग जो स्थापित संरचनाओं और मूल्यों की सीमा के भीतर सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं; और (ग) वे लोग जो प्रथम दो वर्गों से परे जाकर स्थिति की गहन समीक्षा करते हुए इसमें सुधार लाने और संविधान की प्रस्तावना में निहित लक्ष्यों और मूल्यों को हासिल करने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास करते हैं। इनमें से पहला अनिवार्य और बाध्यकारी है, जबकि दूसरा वांछनीय और आवश्यक है और तीसरा हमें समाज के रूप में अपनी संभावनाओं के पूर्ण दोहन के मार्ग पर ले जाएगा। निस्संदेह एक चौथा और उल्लेख नहीं करने योग्य वर्ग ऐसे लोगों का है जो नियमों की अवहेलना करते हैं; जिम्मेवारियों से भागते हैं और अपने व्यवहार से उस सभ्य समाज को कलंकित करते हैं जिसमें वे रहते हैं। एक परिपक्व समाज उन्हें बहिष्कृत कर देगा, जबकि एक कम परिपक्व समाज उनमें सुधार की गुंजाइश ढूढंते हुए इस बोझ को सहन करेगा। अपने नागरिकों को शिक्षित करने, तैयार करने और विकसित करने के प्रति एक समाज और राजतंत्र की प्रतिबद्धता अंतत: नागरिक की सामाजिक प्रतिभागिता, निजी दायित्व के मानक और संवैधानिक नैतिकता के अनुपालन के प्रति उनके दृष्टिकोण में झलकती है। इस प्रकार एक अच्छा नागरिक तैयार करने में व्यापक योगदान किया जा सकता है और उच्च शिक्षा संस्थानों सहित सभी शिक्षण संस्थान इस राष्ट्रीय प्रयास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

मामले के एक अन्य पहलू की समीक्षा आवश्यक है। प्रौद्योगिकी एवं वैश्वीकरण ने यह सुनिश्चित किया है कि अलग-थलग रहना अब कोई विकल्प नहीं है और हमें विश्व में और विश्व के साथ ही रहना है। इसके लिए वैश्विक मानकों, नियमों और व्यवहार के सन्नियमों को स्वीकार करना आवश्यक हो गया है, किन्तु इसके लिए हमें अपनी पहचान और अपने मूल्यों का त्याग नहीं करना है।

बहुलवाद और विविधता का समायोजन हमारी सामाजिक सच्चाई की एक मुख्य विशेषता है। एक प्रसिद्ध विद्वान के शब्दों में बहुसंस्कृतिवाद के प्रति भारतीय दृष्टिकोण 'एक इस

प्रकार की नागरिकता की आकांक्षा करना है जो न तो पूर्ण सजातीकरण द्वारा उत्पन्न सार्वभौमवाद और न ही स्व-सदृश एवं अनुदार समुदायों की एकनिष्ठता से प्रभावित हो'। इस आदर्श प्रतिमान की ऐसे युग में व्यापक प्रासंगिकता है, जो 21वीं सदी के उस नागरिक की रूपरेखा को परिभाषित करना चाहता है जिसकी राष्ट्रीय और पार-देशीय पहचान भी हो।

पूर्वोक्त विचार अनुच्छेद 51क के ग्यारह पहलुओं में से तीन पहलुओं को दोहराने और उनकी प्रासंगिकता का आकलन करने में हमारी मदद करते हैं। हमारे जैसे विविधतापूर्ण और विभिन्न वर्गों वाले समाज की सम्बद्धता के लिए सामाजिक सौहार्द की आवश्यकता है और सर्वांगीण विकास का लक्ष्य रखने और उसे हासिल करने के लिए एक वैज्ञानिक सोच और उत्कृष्टता की जरूरत है। इन्हें बढ़ावा देना और प्राप्त करना नागरिकों के प्रमुख कर्त्तव्यों में से एक है और इसे न्याय चाहने और भ्रातृत्व निभाने की भावना से उदासीनता के बजाय सक्रियता से शुरु किया जाना चाहिए।

यह फिर नागरिकों का कार्य है और विशेषकर आप जैसे लोगों का, जो ज्ञानार्जन के इस केन्द्र के द्वार से निकलकर बाह्य विश्व में कदम रख रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति का एक आदर्श होता है और इसे अभिव्यक्त करने के लिए एक माध्यम होता है। यह आप में से प्रत्येक के मामले में होगा। जहां तक अपनी पसंद का सवाल है, मैंने अक्सर शायर मोहम्मद इकबाल के कुछ शेरों को इस संबंध में काफी प्रासंगिक पाया है, जो मैं आपको सुनाना चाहूंगा:-

सितारों के आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहान और भी हैं
कनात ना कर आलम-ए-रंग-ओ-बू पर
चमन और भी, आशियां और भी हैं
तू शाहीन है परवाज़ है काम तेरा

तेरे सामने आसमां और भी हैं।

मैं आज उत्कृष्टता के लिए पुरस्कृत कुछ चुनिंदा छात्रों और अपने विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त करने वाले सभी छात्रों को बधाई देता हूं। मैं उनके व्यक्तिगत जीवन में खुशी और व्यावसायिक उद्यमों में सफलता की कामना करता हूं। मैं उनसे आग्रह करता हूं कि वे हर समय इस बात को याद रखें कि वे इस देश के नागरिक हैं और इस आधार पर अधिकारों के दावेदार और कर्तव्यों को निभाने के लिए बाध्य हैं।

******